* *तीर्थंकर ! ऐसे बने !!*
  (भावना शतकम्)

* द्वितीय संस्करण ७ अगस्त ८४
  २००० प्रतियाँ

* *रजकण प्रकाशन*
  टीकमगढ़ (म० प्र०)

* सौजन्य से :—
  श्री अनन्दीलाल जी एवं श्रीमति कपूरीदेवी
  गया (बिहार)
  संस्थान - मनीता सन्स ७ धेनु मार्केट इन्दौर (म० प्र०)
  की ओर से धार्मिक उपक्रम

* मुद्रक : एस० पाल प्रिन्टर्स, टीकमगढ़ [म० प्र०]

* एक प्रति : २-०० रुपया

तीर्थंकर ! ऐसे बनें !!

(भावना शतकम्)

आचार्य विद्यासागर मुनि

तीर्थंकर कौन ?

…आज सबके सामने एक ज्वलंत प्रश्न है कि तीर्थंकर कौन होते हैं, तो सुनें ! तीर्थंकर प्रकृति का बंध इन सोलह भावनाओं के अनुचिंतन/हृदयंगम से होता है । जैसा कि प्रस्तुत कृति में पूज्य आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज ने अपनी लेखनी से संजोया है ।

….वे तीर्थंकर जम्बूदीप में अवसर्पिणी/उत्सर्पिणी काल में चौबीस चौबीस ही होते है वैसे विदेह क्षेत्र/धातकी खण्ड/पुष्कार्द्ध द्वीप के सभी मिलाकर पूरे एक सौ सत्तर हो जाते हैं ।

… वे महापुरुष तीर्थंकर कहलाते हैं, जो धर्म चक्र प्रवर्तन करते हैं, जिनके द्वारा अनंतों प्राणी अमरत्व को प्राप्त करते हैं । और बड़ा अकूत वैभव हुआ करता है उनके समवशरण का/समवशरण कहें धर्मसभा, जहाँ बैठकर देव/मनुष्य/तिर्यंच उनकी दिव्य ध्वनि का श्रवण करते हैं, और कुछ मनुष्य तो उनसे श्रमण प्रव्रज्या अंगीकार कर मुक्ति का लाभ लेते हैं ।

….जब कभी तीर्थंकर का जन्म होता है, तो छह महीने पहले से प्रतिदिन साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वर्षा हुआ करती है, वह भी देवों के द्वारा, फिर पंचकल्याणक होते है, गर्भ/जन्म/दीक्षा/ज्ञान/निर्वाण इनके उपरांत चिरकाल से भटकती आत्मा, अक्षय/अनंत/अव्याबाध सुख का भोग करती है ।

….तीर्थंकर ! ऐसे बने ! आचार्य श्री की यह कृति "भावना शतकम्' के नाम से प्रसिद्ध है जो संस्कृत में लिखी गई, जिसका प्रकाशन निर्ग्रन्थ वैय्यावृत समिति कलकत्ता से हुआ है उसी का पद्यानुवाद यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

….वैसे यह कृति मुनि संघ साहित्य प्रकाशन समिति सागर से प्रकाशित हो चुकी है परन्तु जन–मानस की अतृप्ति देख रजकण प्रकाशन इस महान कृतिको पुनः प्रकाशित कर रहा है ।

"रजकण"

आचार्य श्री की लेखनी से

शव नहीं, शिव बनूं

इस युग के
दो मानव
अपने आपको
खोना चाहते हैं,
और एक
भोग राग को
मद्‌य-पान को
चुनता है
और एक
योग त्याग को
वन्द्‌य-ध्यान को
धुनता है।

कुछ ही क्षणों में
दोनों होते
विकल्पों से मुक्त
फिर क्या कहना ?
एक शव के समान
पड़ा है
और एक
शिव के समान
खरा, उतरा है।

('मूक माटी' महाकाव्य से)

तीर्थंकर ! ऐसे बने !

(भावना शतकम्)

卐 मंगलाचरण 卐

[वसंततिलका छंद]

भे प्रभो परम पावन पा पदों को,
योगी करे नमन ये जिनके पदों को।
सौभाग्य मान उनको उर में बिठा लूँ,
साफल्य पूर्ण निज जीवन को बना लूँ ॥१॥

卐 गुरु स्तवन 卐

ध्यानाग्नि से मदन को तुमने जलाया,
पीयूष स्वानुभव का निज को पिलाया।
धारा सुरत्नत्रयहार अतः कृपा लो,
पूजूँ तुम्हें मम गुरो ! मद मेट डालो ॥२॥

卐 शारदा स्तुति 卐

अंधा बिमोह तम में भटका फिरा हूँ,
कैसे प्रकाश बिन संवर भाव पाऊँ।
हे ! शारदे ! बिनय से द्वय हाथ जोड़ूँ,
आलोक दे विषय को विष मान छोड़ूँ ॥३॥

卐 प्रतिज्ञा 卐

सम्माम मैं समय का करता कराता,
हूँ "भावना शतक" काव्य अहो ! बनाता।
मेरा प्रयोजन प्रभो ! कुछ और ना है,
जीतूँ बिभाव भव को बस भावना है ॥४॥

दर्शनविशुद्धि भावना

आदर्श सादृश सुदर्शन शुद्धि प्यारी,
पाके जिसे जिन बने स्वपरोपकारी।
ऐसा जिनेश मत है मत भूल रे ! तू,
साक्षात् भवांबु निधि के यह भव्य सेतू ॥५॥

होता विनष्ट जब दर्शन मोह स्वामी,
जाती तथा वह अनन्त कषाय नामी।
पाते इसे जन तभी जिन ! जैन जो हैं,
सद्-भारती कह रही जनमीत जो हैं ॥६॥

जो अंग अंग करुणा रस से भरा है,
शोभायमान दृग से वह हो रहा है।
औचित्य है समझ में यह बात आती,
अत्युज्ज्वला शशिकला निशि में सुहाती ॥७॥

हो प्राप्त स्वर्ग तक पुण्य विधान से भी,
होता न प्राप्त दृग शस्त निदान से भी।
सत् साधना सहज साध्य सदा दिलाती,
लक्ष्मी अहो मृदुल हाथ तभी मिलाती ॥८॥

दुर्जेय मोह रिपु को जिनने दबाया,
शुद्धोपयोग मणि हार गले सजाया।
वे साधु बोध बिन भी दृग शुद्धि पाते,
जो बाह्य में निरत हैं दुःख ही उठाते ॥९॥

आलोक दे सुजन को रवि से जगाती,
है भव्य कंज दल को सहसा खिलाती।
है पाप रूप तम को क्षण में मिटाती,
ऐसी सुदर्शन विशुद्धि किसे न भाती ॥१०॥

विनय सम्पन्नता भावना

ना पाप को, विनय को शिर मैं नमाता,
हे वीर ! क्योंकि मुझको निज सौख्य भाता ।
जो भी गया तपनताप तया सताया,
क्या चाहता अनल को, तज नीर छाया ॥११॥

सेना - विहीन नृप ज्यों जय को न पाता,
त्यों हीन जो विनय से शिव को न पाता ।
सत् साधना यदि करे दुःख भी टलेगा,
संसार में सहज से सुख भी मिलेगा ॥१२॥

निर्भीक हो विनय आयुध को सुधारा,
हे ! वीर ! मान रिपु को पुनि शीघ्र मारा ।
पाया स्वकीय निधि को जिसने यदा है,
क्या मांगता वह कभी जड़ संपदा है ? ॥१३॥

ये व्यर्थ का नहिं घमण्ड कभी दिखाते,
सन्मार्ग को विनय से विनयी दिखाते ।
पापी कुधि तक तभी भव तीर पाते,
विद्वान भी हृदय में जिनको बिठाते ॥१४॥

संसार में विनय के बिन तू चलेगा,
आनन्द ओ अमित औ मित क्यों मिलेगा ।
योगी सुधी तक सदा इसका सहारा,
लेते अतः नमन हो इनको हमारा ॥१५॥

विद्वेष जो विनय से करते कराते,
निर्भ्रान्त वे नहिं भवोदधि तैर पाते ।
जाना उन्हें भव भवान्तर क्यों न होगा,
ना मोक्ष का विभव संभव शक्य होगा ॥१६॥

सुशील भावना

कामाग्नि से जल रहा त्रयलोक सारा,
देखे जहाँ दुःख भरा कुछ ना सहारा।
ऐसे जिनेश कहते, जगके विधाता,
जो काम -मान-मद त्याग बने प्रमाता ॥१७॥

पूजा गया मुनि गणों यति योगियों से,
त्यों शील, नील मणि त्यों जग भोगियों से।
सत् शील में सतत् लीन अतः रहूँ मैं,
लो ! मोक्ष को निकट ही फलतः लखूँ मैं ॥१८॥

गंगाम्बु को न हिम को शशि को न चाहूँ;
चाहूँ न चन्दन कभी मन में न लाऊँ।
लो शील झील मनकी गरमी मिटाती,
डूबूँ वहां सहज शीतलता सुहाती ॥१९॥

मैं भूत भावि सब सम्प्रति पाप छोड़ूँ,
चारित्र संग झट चंचल चित्त जोड़ूँ।
सौभाग्य मान जिसको मुनि साधु त्यागी,
हैं पूजते नमन भी करते विरागी ॥२०॥

जैसी सती जगत में गज चाल हो तो,
शोभे उषा पवन मन्द सुगन्ध हो तो।
संसार शोभित रहे गतिचार होवें,
सर्वत्र सिद्ध सब वे गति चार खोवें ॥२१॥

वैसा सुशील व्रत संयम योग से रे,
होते सुशोभित सुधी, नहिं भोग से रे।
सिद्धान्तपारग सभी गुरु यों बताते,
सद्ध्यान में सतत जीवन हैं बिताते ॥२२॥

निर्भीक मैं बढ़ रहा शिव ओर स्वामी,
आरूढ़ शील रथ पे अति शीघ्र गामी।
जो काल व्याल - विकराल - काला,
है भीति से पड़ गया वह और काला ॥२३॥

निरन्तर ज्ञानोपयोग भावना

होता विनिर्विष रसायन से धतूरा,
है अग्नि से पिघलता झट मोम पूरा।
जो काम देख शिव को दश प्राण खोता,
विज्ञान को निरख त्यों मद नष्ट होता ॥२४॥

संयोग पा मदन मंजुलकान्तका वे,
जैसा नितान्त ललना जन मोद पावे।
किंवा सुखी कुमुद वारिधि चन्द्र से हो,
वैसा मदीय मन मोदित ज्ञान से हो ॥२५॥

ज्ञानोपयोग बन तू मम मित्र प्यारा,
ज्यों अग्नि का पवन मित्र बना उदारा।
पीड़ा मिटे सुख मिले भव जेल छूटे,
धारा अपूर्व सुख की न कदापि टूटे ॥२६॥

स्वामी ! भले हि शिर पे शशि भा रहा हो,
विज्ञान से विकल शंकर हो रहा हो।
श्री कृष्ण पाकर इसे कुछ ही दिनों में,
होंगे सुतीर्थंकर वंदित सज्जनों में ॥२७॥

ज्ञानोपयोग वर संवर साधता है,
चांचल्य चित्त झट से यह रोकता है।
भाई ! निजानुभवियों यति नायकों ने,
ऐसा कहा सुन ! जिनेन्द्र उपासकों ने ॥२८॥

जाज्वल्यमान न कदापि चलायमान,
हो ज्ञान दीप कर में यदि विद्यमान ।
रूपी दिखे, पर पदार्थ सभी अरूपी,
है स्पष्ट रूप दिखते जिन चित् स्वरूपी ॥२९॥

संवेग भावना

माला सुमेरू मणि से जिस भाँति भाति,
वाणी गणेश मुख से जिन की सुहाति ।
संवेग से मनुज भी उस भाँति भाता,
जो है सदैव जिन का गुण गीत गाता ॥३०॥

बोले विहंगम, उषा मन को लुभाती,
शोभावती वह निशा शशि से दिखाती ।
हो पूर्ण शांत रस से कविता कहाती,
शुद्धात्म में मुनि रहे मुनिता सुहाती ॥३१॥

ज्यों मारता सहज अर्जुन कौरवों को,
संवेग त्यों दुरित कर्म अरातियों को ।
दावा यथा सघन कानन को जलाता,
संसार रूप वन को यह भी मिटाता ॥३२॥

ज्यों नाग नाम सुन मेंढक भाग जाता,
त्यों ही कषाय इसके नहिं पास आता ।
ऐसी विशेष महिमा इसकी सुनो, रे,
संवेग रूप धन पा बन जा धनी रे ॥३३॥

संवेग है परम सौख्यमयी उषा का,
धाता परन्तु शशि है दुःखता निशी का ।
निर्दोष है यह सदा शशि दोष धाम,
संवेग श्रेष्ठ शशि से लसता ललाम ।३४॥

सम्यक्त्व ज्योति बल से रवि को हराता,
है तेज बाड़व भवाम्बुधि को सुखाता।
चांचल्यचित्त मृग को वह व्याघ्र खाता,
संवेग आत्मिक महा सुख का विधाता ॥३५॥

संसार से स्तवन से जड़ भोग से वे,
होते निरीह बुध हैं इनको न सेवे।
पीड़ा अतीव इन से दिन रैन होती,
शीघ्रांति-शीघ्र बुझती निज बोध ज्योति ॥३६॥

कामाग्नि से जल रहा यदि पूर्ण रागी,
धाता नहीं न वह शंकर है न त्यागी।
तो विश्वका अमित दुःख त्रिशूल धारी,
कैसे मिटाकर, बने स्वपरोपकारी ? ॥३७॥

और स्वाद रसना अतिमोद पाती,
पा फूल, फूलसम नासिक फूल जाती।
सतुष्ट वो तृषित शीतल नीर से हो,
मेरा सुतृप्त मन तो अघ त्याग से हो ॥३८॥

सतुष्ट बाल जननीस्तन पान से हो,
फूले लता ललित लो ! जल स्नान से हो।
हो तुष्ट आम्र कलिका लख कोकिला वे,
मेरा कषाय तज, के मन मोद पावे ॥३९॥

शास्त्रानुसार यदि त्याग नहीं बना है,
तो ! दुःख ही न मिटता उससे अहा है।
जो अग्नि क्षार रस से अति ही भरा हैं,
भाई कभी न मिटती उससे क्षुधा है ॥४०॥

शक्तितस्त्याग भावना

क्या साधु से सुवृष से ऋषि से यमी से,
भाई प्रशंसित रही समता सभी से।
सौभाग्य है मम घड़ी शुभ आगई है,
सर्वांग में सुसमता सुसमा गई है ॥४१॥

मैं वीतराग बन के मन रोकता हूँ,
तो सत्य तथ्य निज रूप विलोकता हूँ।
आलोक हो अरुण वो जब जन्म लेता,
अज्ञात को नयन भी झट चाट लेता ॥४२॥

सत् तप भावना

शुद्धात्म में स्थिति सही तप ही वही हो,
तो नश्यमान तन में रुचि भी नही हो।
ऐसा न हो सुख नहीं दुःख ही अतीव,
हैं वीतराग गुरु यों कहते सदीव ॥४३॥

आतापनादि तप से तन को तपाया,
त्यागी बना, बिन दया निजको न पाया।
पाया नहीं सुख कभी वह दुःख पाया,
होता अहिंसक सुखी जिन देव गाया ॥४४॥

वीरे परीषहजयी वह देखने में,
है लीन यद्यपि महाव्रत पालने में।
लक्ष्मी उसे तदपि है वरती न स्वामी,
जो मूढ़ है विषय लंपट भूरि कामी ॥४५॥

लोहा सुवेष्ठित रहे यदि वस्त्र से जो,
होगा नही कनक पारस संग से ओ।
तो संग से सहित जो तप भी करेंगे,
न आत्मको परमपूत बना सकेंगे ॥४६॥

दावा यथा बनज हो वन को जलाता,
भाई तथा तप, सही तन को जलाता।
सम्यक्त्व पूर्ण तप की महिमा यही है,
देवादि देव जिनने जग को कही है ॥४७॥

आशा निवास जिसमें करती नहीं है,
सम्यक्त्व – बोध – युत जो तप ही सही है।
ऐसा सदैव कहती प्रभु सन्त वाणी,
तृष्णा मिटे, झटिति पी अति-शीत-पानी ॥४८॥

साधु समाधि भावना

साधु समाधि करना भव मुक्त होना,
या कीर्ति पूजन, गुणी बन, दुःख खोना।
ऐसा जिनेश कहते शिव मार्ग नेता,
बेत्ता बने जगत के मन-अक्ष-जेता ॥४९॥

ये आधि व्याधि समुपाधि सभी अनादी-
से आ रही, पर मिली न निजी समाधि।
चाहूँ समाधि, नहिं नाक नहीं किसी को,
चाहें सभी चतुर चेतन भी इसी को ॥५०॥

मानी नहीं मुनि समाधि कश सकेगा,
तो वीरदेव जिनको वह क्या ? लखेगा।
सम्मान मैं न उनका मुनि हो करूँगा,
शुद्धात्म को नित नितान्त अहो स्मरूँगा ॥५१॥

वैराग्य का प्रथम पाठ अहो पढ़ाता,
पश्चात् प्रभो प्रथम देव बने प्रमाता।
मैं भी समाधि सधने बनता विरागी,
ऐसी मदीय मन में वर ज्योति जागी ॥५२॥

लाली लगे करलता अति शोभती है,
शोभे जिनेन्द्र स्तव से मम भारती है।
होता पराग वश बात सुगंध वाही,
शोभा तभी मुनि करे मुनि को समाधि ॥५३॥

है भव्य कौमुद शशी जगमें समाधि,
है कामधेनु सुरपादप से अनादि।
कैसे मुझे यह मिले ? कब तो मिलेगी,
हे ! वीर देव कब ज्ञान कली खिलेगी ॥५४॥

वैय्यावृत्य भावना

राजा प्रजा हित करे परस्वार्थ त्यागे,
देता प्रकाश रवि है कुछ भी न मांगे।
कर्तव्यमान कर तू कर साधू सेवा,
पाले पुनः परम पावन बोध मेवा ॥५५॥

जो साधु सेवक नहिं सम मानियों को,
चाहूं न मैं नित भजूं मुनि सज्जनों को।
क्या चाहता कृपण को परिवार प्यारा ?
क्या प्यार से कुमुदने रवि को निहारा ॥५६॥

जो पूर्ण पूरित दयामय भाव से है,
जो दूर भी विमलमानस मान से हैं।
सेवा सुसाधु जन की करता यहाँ है;
होता सुखी वह अवश्य जहाँ तहाँ है ॥५७॥

यैं साधु सेवक कहीं मिलते यहाँ है,
जो मात रूप धरते जगमें अहा है।
प्रत्येक नाग मणि से कब शोभता है,
प्रत्येक नाग कब मौक्तिक धारता है ॥५८॥

जैसा सरोज अलि से सब को सुहाता,
उद्योग से जगत में यश देश पाता ।
वैसा विराग मुनि से यह साधु सेवा,
होती सुशोभित अतीव विभो सदैवा ॥५९॥

मैं काय से वचन से मन से सदैवा,
सौभाग्य मान करता बुध साधु सेवा ।
होऊँ अबन्ध भवबन्धन शीघ्र टूटे,
विज्ञान की किरण मानस-मध्य फूटे॥६०॥

अर्हंत भक्ति भावना

बाधा बिना सहज से जिन से निहारे,
जाते अनागतगतागत भाव सारे ।
शुद्धात्म में निरत जो जिन देव ज्ञानी,
वे विश्व पूज्य भगवन्त रहें अमानी ॥६१॥

हो पूर्ण इन्द्रिय जयी जितकाम आप,
पा के अनन्त सुख को तज पाप ताप ।
क्रीड़ा सदैव करते शिव नारि साथ,
जोड़ूँ तुम्हें सतत हाथ अनाथ नाथ ॥६२॥

पीयूष पावन पवित्र पयोध धारा,
ज्यों तृप्त भूमितल को करती सुचारा ।
त्यों शांति दो दुखित हूं भवताप से जो,
है प्रार्थना मम विभो ! बस आपसे यों ॥६३॥

हो मोह सर्प, तुमहो गरुडेन्द्र नामी,
हो, मुक्ति पन्थ-अधिनायक हो अमानी ।
स्वामी ! निरंजन, न अंजन की निशानी,
पूजूँ तुम्हें बन सकूँ द्रुत दिव्य ज्ञानी॥६४॥

है आदि में स्वमन को फिर मार मारा,
है आदिनाथ तुमने तज भोग सारा ।
कामारि हो इसलिए जग में कहाते,
स्वामी ! सुशीघ्र मम क्यों न व्यथा मिटाते ॥६५॥

वे शांत, सन्त, अरहन्त अनन्त ज्ञाता,
वन्दूँ उन्हें निरभिमान स्वभाव धाता ।
होऊँ प्रवीण फलतः पल में प्रमाता,
गाता सुगीत "जिनका" वह सौख्य पाता ॥६६॥

आचार्य स्तुति भावना

इच्छा नहीं भवन को रखते कदापि,
आचार्य ये न वन से डरते प्रतापी ।
होते विलीन निज में विधि पंक धोते,
पूजो इन्हें समय क्यों तुम व्यर्थ खोते ॥६७॥

[illegible] चलाते,
[illegible] पर में न जाते ।
[illegible] उपेक्षा,
[illegible] तो अभी कुछ रखें [illegible] अपेक्षा ॥६८॥

आचार्य देव मुझ को कुछ बोध देवो,
रक्षा करो शरण में शिशु शीघ्र लेवो ।
क्या दिव्य अंजन प्रकाश नहीं दिलाता,
क्या शीघ्र नेत्र गत-धूल नहिं मिटाता ॥६९॥

ये योग में अचल मेरु बने हुए हैं,
ले खड्ग कर्म रिपु को दुःख दे रहे हैं ।
आचार्य तो अमृत पान करा रहे हैं,
ये मेघ हैं हम मयूर सुखी हुये हैं ॥७०॥

हो जेष्ठ में मित नहीं रवि ओ प्रतापी,
संतप्त पूर्ण करता जग को कुपापी।
आचार्य कोटि शत भास्कर तेजवाले,
देते सदा सुख हमें समदृष्टिवाले ।।७१।।

आचार्य को विनय से उरमें बिठालूँ,
मैं पूज्यपाद रजको शिर पे चढ़ालूँ।
हे मित्र ! मोक्ष मुझको फलतः मिलेगा,
विश्वास है यह नियोग नहीं टलेगा ।।७२।।

बहुश्रुत भक्ति भावना

ज्ञाता बने सभय के निज गीत गाते,
तोभी कदापि मद को मन में न लाते।
वे ही अवश्य उवझाय वशी कहाते,
भाई उन्हें स्मरण में तुम क्यों न लाते ।।७

[illegible] भाव रति राग मिटा दिया है,
आत्मावलोकन तथा जिनने किया है।
पूजूँ भजूँ नित उन्हें दुःख को तजूँगा,
विश्राम से सहज ही निजको सजूँगा। ७४।।

तारा समूह नभ में जब दीख जाता,
दोषी शशी न दिन में निशि में सुहाता।
पै दोष मुक्त उवझाय सदा सुहाते,
हैं श्रेष्ठ ! इष्ट शीश से जिनयों बताते ।।७५।।

स्वाध्याय से चपलता मन की घटा दी,
काषायिकी परिणति जिनने मिटा दी।
पावे सुशीघ्र उवझाय स्वसंपदा वे,
आवे न लौट भवमें गुरु यों बतावे ।।७६।।

साथी बना कुमुद का शशि पक्ष पाती,
भाई सरोज दलका का वह है अराती।
पै साम्यधार उवझाय सुखी बनाते,
हैं विश्व को, इसलिये सब को सुहाते ॥७७॥

वे वैद्य लौकिक शरीर इलाज जाने,
ये वैद्यराज भवनाशक हैं सयाने।
हैं वन्द्य पूज्य शिव पन्थ हमें बताते,
निःस्वार्थ पूर्ण निज जीवन को बिताते ॥७८॥

प्रवचन भक्ति भावना

था है जिनागम रहे जयवन्त आगे,
पूजो इसे तुम सभी उर बोध जागे।
पाओ कदापि फिर ना भव दुःख नाना,
हो मोक्ष लाभ भव में फिर होन आना ॥७९॥

[illegible] में बन फूल जाता,
नाना प्रकार रस पी दुख भूल जाता।
पीऊँ जिनागम सुधा चिर काल जीऊँ,
देवादि शास्त्र मदिरा उसको न पीऊँ ॥८०॥

निष्पक्ष हो श्रमण, आगम देखता है,
शुद्धात्म को सहज से वह जानता है।
जाके निवास करता जिन धाम में जो,
संदेह विस्मय नहीं इस काम में हो ॥८१॥

आधार ले अयि ! जिनागम पूर्ण तेरा,
है, भव्य जीव करते शिव में बसेरा।
मैं भी तुझे इसलिए दिन रैन ध्याऊँ,
धारुँ तुझे हृदय में सुख चैन पाऊँ ॥८२॥

ज्ञाता नहीं समय का दुःख ही उठाता,

औ ना कभी विमल केवल-ज्ञान-पाता ।

राजा भले वह बने विधि क्यों न पाले,

भाई न खोल सकता वह मोह ताले ॥८३॥

श्रद्धा समेत जिन आगम को निहारे,

जो भी प्रभो हृदय में समता सुधारे ।

वे ही जिनेन्द्र पद का द्रुत लाभ लेते,

संसार का भ्रमण त्याग विराम लेते ॥८४॥

षड् आवश्यक भावना

हो सूत्र में कुसुम सज्जन कण्ठ जाता,

निर्दोष ही कनक आदर नित्य पाता ।

जैसी समादरित गाय सुधी जनों से,

वैसी सदीव समता मुनि सज्जनों से॥८५॥

[illegible] हो कृषक तो हल जोत लेगा,

[illegible] यथासमयिक बीज नहीं फलेगा ।

[illegible] अकाल अरे ! करेगा,

[illegible] न, मोक्ष तुझको भव में फिरेगा ॥८६॥

राजा सशस्त्र रणसे जय लूट लाता,

हो शान्त भोजन करो अति स्वाद आता ।

सम्यक जिनेन्द्र स्तुति ही सुख को दिखाती,

भाई निजानुभव पेय पिला जिलाती ॥८७॥

ज्यों वात ज्यों सरित उपर हो चलेगा,

हो शीत, शीघ्र सब के मनको हरेगा,

सिद्धान्त का वर समागम पा, विधाता

आत्मा,अवश्य बनता सुख पूर्ण पाता ॥८८॥

गंगा प्रदान करती बस शीत पानी,
तो गाय दूध दुहती जगमें सयानी ।
चाहूं इन्हें, न इनसे न प्रयोजना है,
देती निजामृत जिनेन्द्र प्रभावना है ॥९५॥

संसार सागर असार अपार खारा,
कोई न धर्म बिन है तुम को सहारा ।
नौका यही तरण-तारण मोक्ष दात्री,
ये जा रहे कुछ गये उस पार यात्री ९६

वात्सल्य भावना

गो वत्स में परम हार्दिक प्रेम जैसा,
साधर्मि में तुम करो यदि प्रेम वैसा ।
शुद्धात्म को सहज से द्रुत पा सकोगे,
औ मोक्ष में अमित काल बिता सकोगे ॥९७॥

वात्सल्य हो उदित ओ उरमें जभी से,
हैं क्रूर भाव मिटते सहसा तभी से ।
भानू उगे गगन भू उजले दिखाते,
क्या आप तामस निशा तब देख पाते ९८॥

निर्दोष हो अनल से झट लोह पिण्ड,
वात्सल्य से विमल आतम हो अखण्ड ।
आलोक से सकल लोक अलोक देखा,
यों वीर ने सदुपदेश दिया सुरेखा ॥९९॥

वात्सल्य तो जनम से तुम में भरा था,
सौभाग्य था सुकृत का झरना झरा था ।
त्रैलोक्य पूज्य जिन देव तभी हुवे हो,
शुद्धात्म में प्रभव वैभव पा लिए हो॥१००॥

बन्धुत्व को जलज के प्रति भानु धारा,
मैत्री रखे सुजल में वह दुग्ध धारा।
स्वामी ! परन्तु जगके सब प्राणियों में,
वात्सल्य हो न मम केवल मानवों में ॥१०१॥

उन्मत्त होकर कभी मन का न दास,
हो जा उदास सबसे बन वीर दास।
वात्सल्य रूप सर में डुबकी लगाले,
ले ले सुनाम "जिनका" प्रभुगीत गाले ॥१०२॥

गुरु स्तुति

आशीष लाभ यदि मैं तुम से न पाता,
तो "भावना शतक" काव्य लिखा न जाता।
हे ! ज्ञान सागर गुरो ! मुझको सम्भालो,
विद्यादि सागर बना तुम में मिलालो ॥१०३॥

मंङ्गल कामना

विभो ! अर्ज मंजूर हो, सुखी रहें सब जीव।
धर्म्यावे निजके विषय को, तज के विषय सदीव ॥१॥

साधु बनो न स्वादु बनो, साध्य सिद्ध हो जाय।
गमनागमन तमी मिटे, पाप पुण्य खो जाय ॥२॥

रत्नत्रय में रत रहो, रहो राग से दूर।
विद्यासागर तुम बनो सुख पाओ भरपूर ॥३॥

रहो स्वपरोपकार में रत निश्चय उरधार।
चिर अपरिचित चित्त में, चिर पुनि करो विहार ॥४॥

जन मिला तुम तप करो, करो कर्म का नाश।
शशि रवि से भी अधिक है, तुम में दिव्य प्रकाश ॥५॥

चरणि ज्ञानसागर गुरो, तारो मुझे ऋषीश।
करुणा कर करुणा करो, कर से दो आशीश ॥६॥

भूल क्षम्य हो

ज्ञानाराधन नित करूँ, मुझ में कुछ नहीं ज्ञान ।
दोष यहाँ यदि कुछ मिले, शोध पढ़ो धीमान ॥ ७ ॥

स्थान एवं समय परिचय

बाहुबली के चरण में, वर्षायोग सहर्ष ।
सुहाग नगरी* में अहो स्थापित कर इस वर्ष ॥ ८ ॥

द्वय त्रि शून्य द्वय वर्ष की श्रावन की शित चौथ ।
जैन नगर में लिख दिया, निजानन्द का स्रोत ॥ ९ ॥

* इति भावना शतकम् *

---

* फिरोजाबाद को सुहाग नगरी कहते है ।

गोमटेश अष्टक

आचार्य विद्यासागर मुनि

ज्ञानोदय छन्द (लय-मेरी भावना)

नीलकमल के दल सम जिनके, युगल सुलोचन विकसित हैं
शशिसम मनहर सुखकर जिनका मुखमण्डल मृदु प्रमुदित है
चम्पक को छवि शोभा जिनकी नम्र नासिका ने जीती
गोमटेश जिन-पाद-पद्म की पराग नित मम मति पीती ॥

गोल गोल दो कपोल जिनके, उजल सलिल सम छवि धारे
ऐरावत गज की सुंडा-सम बाहुदण्ड उज्ज्वल न्यारे
कन्धों पर आ कर्ण-पाश वे नर्तन करते नन्दन हैं
निरालम्ब वे नभ सम शुचि, मम गोमटेश को वन्दन है ।

दर्शनीय तव मध्यभाग है गिरिसम निश्चल अचल रहा ।
दिव्य शंख भी आप कंठ से हार गया वह विफल रहा ।
उन्नत विस्तृत हिमगिरि सम है, स्कंध आपका विलस रहा ।
गोमटेश प्रभु तभी सदा मम तुम पद में निवस रहा ॥

विंध्याचल पर चढ़कर खरतर तप में तत्पर हो बसते
सकल विश्व के मुमुक्षुजन के शिखामणी तुम हो लसते ।
त्रिभुवन के सब भव्य कुमुद ये खिलते तुम पूरण शशि हो ।
गोमटेश प्रभु नमन तुम्हें हो सदा चाह बस मन वशि हो ॥४॥

मृदुतम वेल लताए लिपटीं, पग से उर तक तुम मन में
कल्पवृक्ष हो अनल्प फल दो, भविजन को तुम त्रिभुवन में ।
तुम पद-पंकज पर अलि बन, सुरपति गण करता गुन गुन है
गोमटेश प्रभु के प्रति, प्रतिपल वंदन अर्पित तन मन है ॥५॥

अम्बर तज अम्बर तल स्थित हो, दिग अम्बर नहिं भीत रहे
अम्बर आदिक विषयन से अति विरत रहे भव-भीत रहे।
सर्पादिक से घिरे हुए पर अकम्पनिश्चल शैल रहे
गोमटेश स्वीकार नमन हो, धुलता मन का मैल रहें ॥६॥

आशा के तुम पोषक नहिं हो, समदर्शन के शासक हो
जग के विषयन में वाञ्छा नहिं, दोष-मूल के नाशक हो
भरत भ्रातृ में शल्य नहीं अब, विगतराग हो रोष जला
गोमटेश तुम में मम इस विध; सतत राग हो होय चला ॥७॥

काम धाम से धन कंचन से, सकल संग से दूर हुए
शूर हुए मद मोह मार कर, समता से भरपूर हुए ।
एक वर्ष तक एक स्थान स्थित, निराहार उपवास किये
इसीलिए बस गोमटेश मुनि ! मम मन में अब वास किए ॥८॥

नेमिचन्द्र गुरू ने किया, प्राकृत में गुण-गान ।
गोमटेश थुति अब किया, भाषा-मय सुखखान ॥१॥
गोमटेस के चरण में, नत हो बारंबार ।
विद्यासागर कब बनूँ, भवसागर कर पार ॥२॥

और अन्त में.........!

जैसा कि 'रजकण' का संकल्प है, आचार्य श्री विद्यासागर जी की अमृतमयी वाणी को जन जन तक पहुंचाने का। हमारे प्रयास आपके कर कमलों में हैं। आपके आशीर्वाद एवं सहयोग से 'रजकण' के संकल्प में दृढ़ता आयी है। लक्ष्य प्राप्ति के लिए 'रजकण' नित नये उत्साह से कटिबद्ध है। संघर्ष ही जीवन है। बिना संघर्ष लक्ष्य की प्राप्ति कैसे होगी। लक्ष्य प्राप्ति में अवरोध भी आते हैं 'रजकण' का सहर्ष आमंत्रण है अवरोधों को, आयें हमारी परीक्षा लें, हमारी क्षमता का सही आकलन करें, और 'आशीर्वाद' दें सफलता का, तभी हमारा संकल्प पूर्ण होगा।

हमारा निवेदन है गुरुवाणी को आप आत्मसात करें तथा दूसरों को प्रोत्साहित करें, तभी हमारा संकल्प सार्थक होगा। आप हमारी भावनाओं से जुड़े, आपका सहयोग ही हमारी सफलता है।

आपका सहयोग अपेक्षित है :--

संरक्षक सदस्य-	५००१
सम्मानित सदस्य-	१००१
सदस्य-	५०१
सहयोगी-	१०१

राशि 'रजकण' विद्यासागर साहित्य प्रकाशन टीकमगढ़ के नाम से भेजें।

प्रकाशन आप तक शीघ्र पहुंचाने का दायित्व हमारा है।

'रजकण'

५. चुम्बी द्वार...

प्रभु के
विभु/विभुवनके
निकट जाना चाहते हो तुम....।
उस मंदिर में जाने
टिकट पाना चाहते हो तुम....।
वहाँ जाना बहुत विकट है
मानापमान का
अवसान ! अनिवार्य है
सर्व, प्रथम....।
जिस मंदिर का
चूल शिखर
गगन चूम रहा है
और प्रवेश द्वार....
धरती सूंघ रहा है
वहाँ जाना बहुत विकट है

* * *

(डूबो मत/लगाओ डुबकी से)